द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास १०

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

२. अजित-शांति स्तव (चालु)

गाहा (गाथा)

पक्खिअ चउम्मासे, संवच्छरिअे अवस्स भणिअव्वो;
सोअव्वो सव्वेहिं, उवसग्गनिवारणो अेसो. गाहा.....३८

जो पढई जोअ निसुणई, उभओ कालंपि अजिय संतिथय;
नहु हुंति तस्स रोगा, पुव्वुप्पना वि नासंति. गाहा.....३९

ववगय कलिकलुसाणं, ववगय निद्धंत रागदोसाणं;
ववगय पुणब्भवाणं, नमोत्थु देवाहिदेवाणं ४०

-: शब्दार्थ :-

पक्खिय - पाक्षिक प्रतिक्रमणमें
चउम्मासे - चौमासी प्रतिक्रमण में
संवच्छरिअे - संवत्सरी प्रतिक्रमण में
अवस्स - अवश्य
भणिअव्वो - भणना (पढना)
सोअव्वो - सुनना
सव्वेहिं - सर्व श्री संघ ने
उवसग्गनिवारणो - उपसर्ग का निवारण करने वाला
अेसो - यह
जो - जो
पढइ - पढता है
जो अ - और जो
निसुणई - सुनता ह
उभओकालंपि - दोनों काल
(सबेरे और शाम को)
अजियसंतिथय - अजितनाथ तथा शांतिनाथ
स्तवन को
नह - नहीं
हुंति - होते
तस्स - उसे
रोगा - रोग
पव्वुप्पनावि - पहले हुए हो तो भी
नासंति - नाश होते हैं
ववगय - नाश हुए हैं
कलिकलुसाणं - जिनके कलि के पाप
निद्धतं - प्रबल
राग दोसाणं - जिनके राग द्वेष
पुणब्भवाणं - जिनके जन्म मरण
नमोत्थु - नमस्कार हो
देवाहिदेवाणं - देवाधि देवो को

गाथार्थ : पाक्षिक प्रतिक्रमणमें, चौमासी प्रतिक्रमण में और संवत्सरी प्रतिक्रमण में उपसर्गो का निवारण करने वाले इस स्तवन को अवश्य पढना चाहिये और सर्व संघ ने सुनना चाहिये.....३८

जो पुरुष अजित-शांति स्तवन को दोनों काल (सबेरे-शाम) पढे, सुने उसे अगर पूर्व में रोग हुए हो तो वह भी नाश हो जाते हैं.....३९

जिनके कलिकाल के पाप नाश हो गये हैं, जिनके प्रबल राग-द्वेष नाश हो गये हैं, जिनके जन्म मरण नाश हो गये हैं, ऐसे देवाधिदेव अर्हंत भगवान को नमस्कार हो.....४०

सव्वं पसमई पावं, पुण्णं वड्ढई नमंसमाणस्स;
संपुन्न चंदवयणस्स, कित्तणं अजिअसंतिस्स.....४१
जई इच्छह परमपयं, अहवा कित्तिं सुवित्थडं भुवणे;
ता तिअलोगुद्धरणे, जिणवयणे आयरं कुणह.....४२

-: शब्दार्थ :-

सव्व - सब
पसमई - शांत हो जाते हैं
पावं - पाप
पुण्णं - पुन्य
वड्ढइ - बढता है
नमंसमाणस्स - नमस्कार करने वाले के
संपुन्नचंद - पूर्णचंद्र जैसा
वयणस्स - मुखवाला
कित्तणं - कीर्तन
अजिअसंतिस्स - अजितनाथ तथा शांतिनाथ भगवान को
जई - यदि
इच्छह - इच्छा रखते हो
परमपयं - परम पद
अहवा - अथवा
कित्तिं - कीर्ति को
सुवित्थडं - अच्छी तरह विस्तार पाई हुई
भुवणे - जगत में
तिअलोगुद्धरणे - तीन लोक के प्राणियों का उद्धार करने वाले
जिणवयणे - जिनवचन में
आयरं - आदर / श्रद्धा
कुणह - करो

गाथार्थ : पूर्ण चंद्र जैसे मुखवाले अजितनाथ तथा शांतिनाथ भगवान को नमस्कार करते उनका कीर्तन करते पुरुषो के सर्व पाप शांत हो जाते हैं और पुन्य बढता है.....४१.

हे भव्य प्राणीयों ! यदि तुम परम पद को अथवा जगत विस्तरीत कीर्ति की इच्छा रखते हो तो तीन लोक का उद्धार करने वाले जिनवचन में आदर / श्रद्धा करो.....४२

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारणम्;
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनं ४३
उपसर्गाः क्षयं यांति, छिद्यंते विध्नवल्लयः;
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ४४

-: शब्दार्थ :-

सर्व मंगल - सभी मंगलो में
मांगल्यं - मंगलरुप
सर्व कल्याण - सभी कल्याणों का
कारणं - कारणरुप
सर्व धर्माणां - सभी धर्मो में
जैन - जिन भगवान का
जयति - जय पाता है
क्षयं - क्षय
यांति - पाते है
छिद्यं ते - छिन्न भिन्न
विघ्नवल्लयः - विघ्न रुपी बेल (लता)
प्रसन्नतां - प्रसन्नता
अेति - पाता है
पूज्यमाने - पूजने से
जिनेश्वरे - जिनेश्वर भगवान को

गाथार्थ : सभी मंगलो में मंगलरुप, सर्व कल्याणों का कारण और सर्व धर्मो में श्रेष्ठ जैन शासन जय पाता है ।

श्री जिनेश्वर परमात्मा की पूजा करने से उपसर्गो का क्षय हो जाता है, विघ्न रुपी लतायें छिन्न भिन्न हो जाती हैं तथा मन प्रसन्न हो जाता है ।

शिवमस्तु सर्व जगतः परहित निरताः भवंतु भूतगणाः
दोषाः प्रयांतु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः.....४५
स्मरणं यस्य सत्वानां, तीव्रतापोपशांतये;
उत्कृष्ट गुणरूपाय, तस्मै श्री शांतये नमः.....४६

-: शब्दार्थ :-

शिवम् - कल्याण
अस्तु - हो
सर्व जगतः - पूरे जगत का
परहित - दूसरों के हित में
निरताः - तत्पर
भवन्तुं - हो
भूतगणाः - प्राणीओं के समुह
दोषाः - दोषो
प्रयान्तुं - पाओ
नाशं - नाश
सुखी - सुखी
भवतु लोकः - हो लोग
स्मरणं - स्मरण
यस्य - जिनका
सत्वानां - प्राणीओं के
तीव्रताप - उग्र ताप
उपशांतये - शांति के लिये होता है
उत्कृष्ट गुण रुपाय - जिनके गुण तथा रुप उत्कृष्ट हैं
तस्मै - ऐसे
श्री शांतये - श्री शांतिनाथ को
नमः - नमस्कार हो

गाथार्थ : सर्व जगत का कल्याण हो, प्राणीओं के समुह दूसरो के हित में तत्पर बनो, दोषों का नाश हो, सभी जगह लोग सुखी बने.....४५

जिनका स्मरण प्राणीओ के तीव्रताप को शांति के लिए होता है, ऐसे उत्कृष्ट गुण तथा रुप वाले श्री शांतिनाथ को नमस्कार हो.....४६

श्रीगणधरवाद

श्री प्रभास गणधर

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

भगवान महावीर के ११ गणधरो में अंतिम गणधर होने का मान जिसे मिला ऐसे महात्मा महापुरुष श्रीप्रभासस्वामी राजगृही नगरी के निवासी ब्राम्हण थे । राजगृही के कौंडिन्य गोत्र के द्विज्येष्ठ बलभद्र उनके पिता थे और अतिभद्रा ब्राह्मणी उनकी माता थी । पुष्य नक्षत्र में उनका जन्म हुआ था, पूरा नाम प्रभास बलभद्र कौडिन्य था । चौथे आरे में जन्मे हुए यह महापुरुष कंचनवर्णी काया वाले थे । वज्रऋषभनाराच संघयणवाले तथा समचतुरस्त्र संस्थान वाले उत्तम शरीर के धारक आपश्री तद्भवमोक्षगामी आत्मा थे । श्रुति, स्मृति, पुराण, वेद, वेदांत का अभ्यास करके १६ वर्ष की छोटी उम्र में विद्वान पंडित बन गये थे, एवं छोटी उम्र से ही चतुर बुद्धिशाली पंडित प्रभास अध्यापक का व्यवसाय करते थे और उनका ३०० शिष्यों का परिवार तो मात्र सोलह वर्ष की उम्र में ही था, इतनी छोटी उम्र में वे शास्त्रार्थ सभाओं में चर्चा करने जाते थे ।

सोमिलविप्र ने इस पंडित को भी आमंत्रण देकर अपने यज्ञ में बुलाया था, ऐसे विद्वान पंडित और उसमें भी तद्भवमोक्षगामी यानि उसी भव में मोक्ष में जाने वाले थे । फिर भी आश्चर्य तो यह था कि मोक्ष में ही वो नहीं मानते थे । मोक्ष है या नहीं ? मोक्ष होता है क्या वास्तव में ? मोक्ष कहां होता है ? मोक्ष में क्या होता है ? देहरहित जन्म मरण रहित आत्मा की मुक्तावस्था मानने को ही वे तैयार नहीं थे ।

परंतु अपापानगरी के महसेन उद्यान में पधारे हुए सर्वज्ञ महावीर की बात सुनकर वे भी यज्ञमंडप से अपने ३०० शिष्यों के परिवार के साथ समवसरण में गये । प्रभु ने उससे कहा की, **''हे प्रभास ! जरामर्यंवायदग्नि होत्र''** इस वेदवाक्य से तुझे मोक्ष का अभाव दिख रहा है । जो अग्निहोत्र है वो जरामर्य है यानि आजीवन अग्निहोत्र करना चाहिये यानि जो मानव जिंदगी के अंत तक अग्निहोत्र करता रहे उसे मोक्षफल देने वाली क्रिया करने का अवसर रहता नहीं है, अग्निहोत्र क्रिया में कितने जीवो का वध होता है और कितनो पर अमुक तरह का उपकार भी होता है इसलीये स्वर्ग हो सकता है पर मोक्ष हो सकता नहीं, ऐसी तेरी समझ है वो बराबर नहीं है, कारण की **''द्वे ब्रह्मणीवेदिव्ये परमपरंच पत्रपरं सत्यज्ञानं अनंतरंब्रह्मेति''** यह वेदपद कहता है की एक पर और दूसरा अपर ऐसे दो ब्रम्ह है, इसमें परब्रम्ह वो सत्यज्ञान है और अनन्तर ब्रम्ह यानि मोक्ष है, ये वेदपद ही मोक्ष के अस्तित्व को सिद्ध कर देते है तथा **'' जरामर्यंवा यदग्निहोत्रं कुर्यात् ''** इस पद का अर्थ भी तू बराबर समझा नहीं है । इस वेदवाक्य में जो **''वा''** शब्द है उसका अर्थ यहां **''अपि''** करने का है ऐसा करने से इस वाक्य का अर्थ तुझे समझेगा । इस वाक्य का अर्थ ऐसा है की जो कोई स्वर्ग का ही लक्ष्य रखता हो उसे जीवन पर्यंत अग्निहोत्र करना चाहिये, परंतु जो मोक्षार्थी हो उसे अग्निहोत्र तजकर मोक्ष दिलवाने वाले अनुष्ठानो में ही ओतप्रोत बन मोक्ष साधना चाहिये । प्रभु के अमृतमय वचनो से प्रभास पंडित संशय दूर होने से अपने तीन सौ विद्यार्थी शिष्यों सहित नम्र भाव से प्रभु के चरणों में झुक पडे एवं प्रभु के पास दीक्षा लेकर प्रभु के शिष्य बने, फिर प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर उन्होंने द्वादशांगी की रचना की, विचक्षण विद्वान ने बीज बुद्धि से तुरंत मोक्ष के बारे में समझ लिया, भ्रमणा दूर हो

गयी । सच्चा सम्यकत्व समझ में आया और सरल स्वभावी कृतनिश्चयी प्रभास ने १६ वर्ष की युवावस्था में उसी क्षण संसार छोड दिया एवं वैशाख सुद ११ के दिन ३०० शिष्यों के साथ दीक्षित हो साधु बने और वीर प्रभु के ११ वें गणधर होने का मान प्राप्त किया । वीर प्रभु के ग्यारह गणधरो में प्रभास ही सबसे छोटी उम के युवा गणधर थे और चारित्र पाने के बाद सबसे कम से कम सिर्फ आठ वर्ष ही छद्मस्थ अवस्था में प्रभास ही रहे है ।

वीर प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना की, चौदह पूर्वी हुए, २ वर्ष की छद्मस्थ अवस्था पूर्ण करके आपश्री ने उम्र के २४ वें वर्ष में तो चार घाती कर्मो को खपाकर केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त किया, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बने । भगवान महावीर के गणधरों में छोटी से छोटी उम्र के केवलज्ञानी प्रभासस्वामी एक ही थे, उन्होंने १६ वर्ष तककेवली,सर्वज्ञ के रुप में विहार करके इस धरती पर के अनेक भव्यात्माओ का कल्याण किया । श्रीप्रभासस्वामी का आयुष्य अल्प था, वे अपनी चालीस वर्ष की छोटी उम्र में अपनी जन्मभूमि राजगृही पधाये और अंत में एक महिने के निर्जल उपवास के साथ संलेषणा करके पादपोपगमन कर निर्वाण पाये, मोक्ष सिधाये, सिद्ध, बुद्ध, निरंजन, निराकार हुए । ग्यारह गणधरो में बहुत छोटी उम्र में वे मोक्ष में गये, उनकी शिष्य संतति की परम्परा नहीं चली ।

प्रभु ने चार हजार व चार सौ ब्राह्मणों को दीक्षा दी, उसमें मुख्य ग्यारह को गणधर पद पर स्थापित किया, उन ग्यारह गणधरो ने त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना की, उसकी प्रभु ने उन्हें अनुज्ञा दी । उस समय सौधर्मेन्द्र दिव्य सुगंधित चूर्ण से भरा रत्नजडित सुवर्ण का थाल लेकर खडा रहा, गौतम आदि ग्यारह गणधर कुछ मस्तक झुकाकर खडे रहे, देव वाद्यो के शब्द बंद करके सावधान होकर सुनने लगे । श्रीवीरप्रभु रत्नमय सिंहासन से उठ दिव्य चूर्ण की मुठ्ठी भरकर बोले की ''इन्द्रभूति गौतम को द्रव्य गुण पर्याय द्वारा तीर्थ की अनुज्ञा देता हुं '' ऐसा क्रम से कहते हुए प्रभु ने उन ग्यारह गणधरो के मस्तक के उपर वासक्षेप किया, फिर देवो ने भी उनके मस्तक पर सुगंधित चूर्ण, पुष्प, चंदन आदि की वृष्टि की । प्रभु ने सुधर्म गणधर को मुख्य रखकर गच्छ की अनुज्ञा दी ।

(लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

आ. हरिभद्रसूरि म.सा.

जंबुद्वीप के नदियों की संख्या बताने के बाद अब नदियों के मूल (उगम) और मुख का विस्तार बताते है ।

छज्जोयण सकोसे, गंगासिंधूण वित्थरो मूले ।
दसगुणिओ पज्जंते, इय दुदु गुणणेण सेसाणं ।।

गंगा और सिंधु नदीका मूल में विस्तार छह योजन और एक गाऊ है । अंत में दस गुणा है । इसी तरह शेष नदियोंका दुगुना-दुगुना है । (भरत-ऐरावत क्षेत्र में यह प्रमाण अवसर्पिणी के पहले और उत्सर्पिणीके अंतिम आरे के समय का है । काल के अनुसार उसमें फेरबदल होता रहता है, सर्वज्ञ के वचनों में शंका नहीं करनी चाहिये ।)

नदियाँ	**मूल**	**मुख**
गंगा-सिंधु रक्तारक्तवती	६। योजन	६२।। योजन
हिमवंत-हिरण्यवंत की ४ नदियाँ	१२।। योजन	१२५ योजन
हरिवर्ष-रम्यक्क्षेत्रकी ४ नदियाँ	२५ योजन	२५० योजन
सीता-सीतोदा नदियाँ	५० योजन	५०० योजन

पर्वतों का प्रमाण और रंग

पर्वतों की संख्या आदि का विचार हमने पहले ही किया है, यहाँ पर पूज्यपाद हरिभद्रसूरि महाराज पर्वतों का प्रमाण और रंग बताते हुए कहते है -

जोयणसयमुच्चिट्ठा, कणयमया सिहरिच्चुल्ल हिमवंता ।
रुप्पि माहिवंता, दुसउच्चा रुप्प कणयमया ।।२७।।

शिखरी और चुल्लहिमवंत पर्वत सौ योजन उंचे है और सुवर्णमय है, रुक्मि और महाहिमवंत दो सौ योजन उंचे है और अनुक्रम से रजतमय और सुवर्णमय है ।

चत्तारि जोयणसए उच्चिट्ठो निसढ नीलवंतो अ ।
निसढो तवणिज्जमओ, वेरुलिओ नीलवंतगिरि ।।२८।।

निषध और नीलवंत पर्वत चार सौ योजन उंचे है, निषधपर्वत तपनीय जाति का लाल सुवर्ण का है, तो

नीलवंत पर्वत वैडूर्य रत्नमय है ।

सव्वेवि पव्वयवरा, समयक्खित्तम्मि मंदर विहूणा ।
धरणितले उवगाढा, उस्सेहचउत्थभायमि ।।२९।।

समयक्षेत्र में रहे हुए मेरु पर्वत सिवाय सब मुख्य पर्वत अपने उंचाई के चौथे भाग जितनाजमीन के अंदर होते है । यहाँ पर पर्वतों के उंचाई की बात कहते हुए ''समय क्षेत्र'' में रहे हुए पर्वत कहा, यहाँ पर प्रश्न होगा ''समयक्षेत्र याने क्या ?''

जिस क्षेत्र में समय मुहूर्त अथवा सेकंड, मिनिट, घंटा, प्रहर, रात, महिना, साल आदि काल प्रवर्तमान है, उसे समयक्षेत्र कहते है । ढाई द्वीप का क्षेत्र समयक्षेत्र है, क्योंकि वहाँ चल सूर्य,चन्द्र होने से उनकी गति के कारण समय की गिनती होती है । ढाई द्वीप के बाहर सूर्य-चन्द्र है पर वे स्थिर होने से रात-दिन आदि भेद होता नहीं । यह समयक्षेत्र ढाई द्वीप प्रमाण अथवा ४५ लाख योजन प्रमाण है । यही क्षेत्र मनुष्यक्षेत्र के नाम से पहचाना जाता है । इसी क्षेत्र में मनुष्य के जन्म-मरण होते है ।

ऐसे समयक्षेत्र में रहे हुए (ढाई द्वीप में) और मेरु पर्वत के सिवाय सब मुख्य पर्वत अपनी उंचाई के चौथाई भाग जितने जमीन में गहरे होते है । अतः शिखरी और चुल्लहिमवंत यदि १०० योजन उंचे है तो २५ योजन गहरे है । रुक्मि और महाहिमवंत पर्वत यदि २०० योजन उंचे है तो ५० योजन गहरे है, ऐसा समझना -

पर्वतका नाम	उंचाई	गहराई	रंग	किसका बना हुआ है
शिखरी	१०० योजन	२५ योजन	पीला	सवर्ण का
चुल्लहिमवंत	१०० योजन	२५ योजन	पीला	सुवर्ण का
रुक्मि	२०० योजन	५० योजन	सफेद	रजत का
महाहिमवंत	२०० योजन	५० योजन	पीला	सुवर्ण का
निषध	४०० योजन	१०० योजन	लाल	तपनीय सुवर्ण का
नीलवंत	४०० योजन	१०० योजन	हरा	वैडूर्य रत्न का (पन्नेका)

खंडाईगाहाहिं, दसहिं दारेहिं जंबुद्वीवस्स ।
संघयणी सम्मता, रइया हरिभद्दसूरीहिं ।।३० ।।

खंडा आदि गाथाओं के साथ दस द्वारों द्वारा श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी द्वारा रचित जंबूद्वीप संग्रहणी पूर्ण हुई ।

हम जिस जंबुद्वीप में रहते है, उसमें भी अनेकानेक शाश्वत अशाश्वत पदार्थ रहे हुए है । सब पदार्थों का अभ्यास असंभवित है । श्रीमद् हरिभद्रसूरि महाराजा ने हम सब पर महान उपकार कर संक्षेप में दस द्वारों द्वारा हमें जंबुद्वीप के शाश्वत पदार्थों से परिचित कराया । यह परिचय गाढ बनाकर आगे हम ''बृहद् संग्रहणी'' का अभ्यास करने एवं क्षेत्रसमास को जानने की जिज्ञासा रखें और पुरुषार्थ करें ।

सरल भाषा में संग्रहणी का परिचय कराते हुए कहीं जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो तो त्रिविध त्रिविध मिच्छामि दुक्कडम् ।

श्रावक - दिनकृत्य निद्रा

सबेरा होता है, सूर्य के उदय के साथ मानो कर्म का भी उदय होता है, वैसे मनुष्य भी दौडने लगता है । एक काम पुरा नहीं होता वहाँ दुसरा काम आकर खडा हो जाता है । पूरे दिवस के भ्रमण से सूर्य जिस तरह अस्ताचल की ओर धीरे धीरे ढलने लगे वैसे ही मानव भी दौडधूप से थककर घर की ओर लौटने लगता है । औदारिक वर्गणा की बनी हुई यह काया, कब तक खिंच सकेंगी, थक जाता है उसे विश्राम की जरुरत पडती है, यह विश्राम रात की नींद से मिल जाता है ।

संसार के सभी प्राणी रात को निद्रा लेते है । शारिरीक थकान दूर कर नयी स्फूर्ति प्राप्त करने के लिये यह निद्रा आवश्यक महसूस होती है । परंतु साधक आत्मा इस निद्रा को घटाने और सुधारने में सतत प्रयत्नशील होते है । देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा श्री महावीर प्रभु के संयम जीवन का चिंतन करें तो खयाल आता है की प्रभु साधना काल दरमियान बैठे भी नहीं है तो सोने की तो बात ही कहाँ ?

ऐसे महापुरषों की बातें जानकर हम अपनी नींद घटाने की कोशीश करें, पुरषार्थ करें, और जब देह को विश्राम की जरुरत पडे तब दिवस का नित्यक्रम पूर्ण कर जो विधि शास्त्रों ने बतायी है, उस विधिपूर्वक मर्यादित नींद लेकर साधनामें सहायक बनें, कहा जाता है की - ''नींद और आलस बढाने से बढते है और घटाने से घटते हैं ।'' हम अपनी नींद घटाकर जीवन के कार्यशील पल बढायें, निद्रा विधिपूर्वक स्वीकार उसे सुख-शांति से भरपूर बनायें ।

निद्रा विधि

निद्रा का समय :- परिवार के साथ बैठकर धर्मकथा धर्मदेशना करने के बाद याने एक प्रहर प्रमुख रात्री बीत जाने के बाद श्रावक विधिपूर्वक अल्प नींद ले । अति नींदवाला व्यक्ति सचमुच दोनों भव के कृत्यों से नष्ट होता है । निद्रा में आसक्त होकर बिना समय के निद्रा करना यह प्रशंसनीय नहीं है । कुसमय पर नींद लेनेवाला सुख और आयुष्य दोनों का ऱ्हास करता है । त्रिसंध्या समय पर नींद नहीं लेनी चाहिये । क्यों की रात को नींद कम हुई हो, अशक्त हो, रोगी हो, वृद्ध हो तभी दिन को नींद ले अन्यथा अकारण दिन में सोना नहीं चाहिये, उससें प्रमाद में वृद्धि और धर्म में हानि होती है ।

निद्रा के लिये स्थान :-

देवताधाम्रि वाल्मिके । भूरुहाणां तलेपि च ।
तथा प्रेतवने चैव । सुप्यान्नापि विदिक्शिराः ।।

किसी भी देव के मंदिर में, बिल के उपर, वृक्ष के नीचे, स्मशान भूमि में एवं विदिशा में सिर करके शयन करना नहीं ।

प्राकूशिरः शयने विद्या, धनलाभश्च दक्षिणे ।
पश्चिमे प्रबला चिंता, मृत्युर्हानिस्तथोत्तरे ।।

पूर्व दिशा में मस्तक रख सोने से विद्या मिलती है, दक्षिण में सिर रखकर सोने से धनलाभ होता है, पश्चिम की ओर सिर रखकर सोने से चिंता होती है, उत्तर में सिर करने से हानि एवं मृत्यु होती है ।

जिसमें खटमल हो, जिसके लकडे टूटे हो, मलीन हो, ज्यादा पाये जुडे हुए हो, जले हुए लकडीके बने हुए हो ऐसी खटिया का त्याग करना, पूजनीक से उच्चासने सोना नहीं ।

निद्रा के पहले श्रावक का कर्तव्य

निद्राधीन होने के पहले श्रावक ने निम्नलिखित विधि अवश्य करना -

१) जीवराशी खमाना २) अठ्ठारह पापस्थानक की आलोचना लेना ३) दुष्कृत्यकी निंदा करना ४) सुकृत की अनुमोदना करना ५) चार शरणों का स्वीकार करना ६) सागारी अनशन का स्वीकार ।

जीवन क्षणभंगूर है, आज सबके बीच सुख से बैठा हुआ व्यक्ति कब काल का ग्रास बन जायेगा इसका पता नहीं लगता, ऐसे समय में सच्चे साधक श्रावक ने सतत सावधान रहना आवश्यक है । अंततः तो जैसी मति वैसी गति होती है । इसीलिये भरत महाराजा ने एक खास सेवक रखा था जो भरत महाराजा को सावधान करते हुए हर घंटे छडी पुकारते हुए पुकारता था, **चेत.... चेत.... भरत, काल नगारा देत** । ऐसी चेतावनी से आत्मा को जागृत रखने की आज वर्तमान काल में बडी आवश्यकता है । बॉम्ब का एक स्फोट सेकडो जीवों को क्षणभर में खलास कर देता है, भूकंप का एक धक्का लाखों लोगों को भूमि के अंदर समा लेता है, रात्री में सोया हुआ भाग्यशाली सबेरे भला चंगा उठेगा या नहीं इसमें शंका रहती है । तब धर्म कहता है ''हे जीव ! मृत्यु को रोकने की, अटकाने की शक्ति किसी में नहीं है । परंतु उसे सुधार जरुर सकते हैं । समाधीमय बना सकते है'' इसीलिये तो नींद के पहले श्रावक चौरासी लाख जीवायोनी के सभी जीवों को बारबार खमाता है, वैर का विसर्जन कर सब के साथ मैत्री की मंगल महफील जमावे, जीवन में जम कर बैठे हुए अठ्ठारह पापस्थान को आलोवे, भवोभव में जहाँ जहाँ, जब जब अठ्ठारह पापास्थानक का सेवन किया हो उसके लिये बारबार त्रिविध-त्रिविध मिच्छामि दुक्कडम् मांगे, आत्मा को निर्मल बनावे, जीवन में जाने अनजाने हो गये दुष्कृतों की निंदा करे, जीवन में किये हुए सुकृतों की अनुमोदना करें, दुष्कृतकी निंदा करने से पाप का क्षय होता है, सुकृत की अनुमोदना करने से पुण्य में वृद्धि होती है, सत्कार्य करने का बल प्राप्त होता है ।

संसार के स्वरुप को जानकर, स्वार्थ को पहचान कर, वैराग्य धारण कर, चार शरणों का स्वीकार करें -

चत्तारी शरणं पवज्जामि - अरिहंता शरणं पवज्जामि,
सिद्धा शरणं पवज्जामि - साहू शरणं पवज्जामि,
केवलि पन्नतं धम्मं शरणं पवज्जामि ।

चार गति का हरण करनेवाले ऐसे मंगलमय अरिहंत, सिद्ध, साधु एवं केवली भगवंतो से प्ररुपित धर्म का शरणा स्वीकार कर पावन होते है और अंत में मोह को घटाकर सागारि अनशन का स्वीकार करते है ।

जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीए ।
आहार मुवहि देहं, सव्व तिविहेण वोसरिअं ।।

याने

आहार, शरीरने उपधि, पच्चक्खुं पाप अढार;

मरण आवे तो वोसिरे, जीवुं तो आगार ।

आज की रात में इस देह का प्रमाद होवे याने मृत्यु आये तो आहार, उपधि (जीवनापयोगी एकत्रित की हुई सभी वस्तुअें, सामग्री, उपकरण) और देह इन सब को त्रिविध (मन,वचन, काया से) वोसिराता हुं ।

विषयवासना के विचारों में सोचा हो तो जब तक जागता नहीं तब तक विषयवासना में ही गिना जाता है, ऐसा वीतराग भगवंत का उपदेश है । इसी कारण से सर्वथा उपशांत मोह होकर धर्म वैराग्य भावना से (अनित्यादि भावनाओंसे) भावीत होकर, वैराग्यवासित चेतना बनाकर निद्रा लेना चाहिये । जिससे कुस्वप्न, दुस्वप्नादिक आने से रोककर धर्ममय स्वप्न पा सकते है । इस तरह निःसंगतादि आत्मकपने से आपदा का बहुलपना है । आयुष्य सोपक्रम (टूट सके ऐसा) है, कर्म की गति विचित्र है, ऐसा जानकर यदि निद्राधीन हुआ हो तो उसके पराधीनता से आयुष्य की समाप्ति होती है तो भी शुभ गति को ही पायेगा ।

उदायन राजा गुरुभगवंत के पास पोषध में रहे थे, रात्रि के समय स्वाध्यायादि से निवृत्त होकर संथारा पोरिसी का पाठ कर विधिपूर्वक शयन किया, तब कपट से साधु बने विनयरत्न साधु ने उनकी हत्या की फिर भी समाधि मरण को पाकर उदायन राजा को सद्गति मिली ।

इसी तरह जो विधिपूर्वक शयन करता है, वह सद्गति को ही प्राप्त होता है ।

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

अंतराय कर्म एवं कर्मबंध

सिरिहरियसमं एयं, जह पडिकूलेण तेण रायाई ।
न कुणई दाणाईयं, एवं विग्घेण जीवो वि ।।

गाथार्थ - अंतराय कर्म राजा के भंडारी जैसा है । जिस प्रकार भंडारी की प्रतिकुलता के कारण राजा दान नहीं कर पाता है, ठीक उसी तरह अंतराय कर्म के उदय से जीव दानादि नहीं कर सकता ।।५३।।

राजा दान देने की इच्छा वाला हो, राजा के पास भंडार भरपूर हो, विपुल धन वैभव हो, दान लेने वाले को जरुरत हो, उसमें संपूर्ण योग्यता, पात्रता हो, सब कुछ व्यवस्थित हो फिर भी भंडारी को राजा दान दे यह अच्छा न लगता हो तो आडी-तेडी बातों से राजा के कान भर कर राजा को दान देने से अटकावे उससे राजा दान नहीं दे सकता । उसी तरह अंतराय कर्म के उदय में यह जीव भी दानदि कर सकता नहीं ।

इस तरह आठ मुख्य और १५८ उत्तर भेद के द्वारा कर्म हमें कैसा कैसा विपाक फल देते हैं, यह समझाया । हमारी आत्मा ने अनंत वार इन सभी कर्मो का विपाक भोगा है । ऐसा जानने समझने के पश्चात सहज मन में प्रश्न उठता है, ऐसे फल देने वाले कर्म बंधते कैसे है ? बांधे तो विपाक भोगना पडे, अगर बांधे ही नहीं तो विपाक कहाँ से होगा । अर्थात न ही होगा । आगामी गाथाओं में कर्म किस प्रकार बंधते हैं ? उसे समझाने का सुंदर प्रयास किया है ।

पडिणीयत्तण - निन्हव-उवघाय-पओस-अंतराएणं ।
अच्चासायणयाए, आवरणदुगं जीओ जयइ ।।५४।।

गाथार्थ :- प्रत्यनीकत्व (विरुद्ध आचरण) निन्हव उपघात प्रद्वेष और अन्तराय करने से तथा अतिशय आशातना करने से जीव दोनों (ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय) प्रकार के आवरण कर्म बांधता है ।

कर्म बंध के मुख्य चार हेतु हैं -

१) मिथ्यात्व २) अविरती ३) कषाय ४) योग

इन चार हेतु से प्रति पल, क्षण क्षण जीव कर्म बांधता ही है । परंतु उसमें जब विशेष हेतु जुडता है, तब वे वे कर्म जीव तीव्र रसपूर्वक बांधता है, जिसका यहाँ विस्तार से वर्णन है ।

ज्ञान और दर्शन आत्मा के मुख्य गुण है, जिससे ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय कर्म बंध के छह विशेष हेतु यहाँ बताते हैं ।

ज्ञान-दर्शन के प्रति, ज्ञानी-दर्शनी (देव-गुरु) तथा ज्ञान दर्शन के साधन याने जिनालय, जिन-प्रतिमा, जिन प्रवचन, पुस्तक, कागज, लेखनी, पेन, पेन्सिल, माला, पूजा सामग्री, पूजा के साधनो के प्रति ।

१. प्रत्यनीकत्व : - उपरोक्त साधनो और व्यक्तिओं के प्रति अनिष्ट आचरण करने से, उन्हें मनदुःख, अपमान, अप्रीति हो ऐसा आचरण करने से ।

२. निन्हव :- गुरु के वचनों से विपरीत प्ररुपणा करने से, गुरु का नाम छुपाने से, दूसरे को गुरु कहने से ।

३. उपघात :- देव-गुरु का घात करने से, हत्या करने से, मार मारने से ।

४. प्रद्वेष :- देव-गुरु एवं ज्ञान-दर्शन के साधनो के उपर द्वेष धारण करने से, असद्भाव, तिरस्कार और नफरत का भाव रखने से ।

५. अंतराय :- ज्ञान-दर्शन की आराधना में अंतराय विघ्न करने से ।

६. आशातना :- ज्ञान-दर्शन की अत्यन्त आशातना, अवहेलना निंदा करने से ।

इन छह कारणों से जीव सविशेष ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म तीव्ररस और दिर्घस्थिति वाला बांधता है ।

ज्ञान-ज्ञानी-ज्ञान की सामग्री की आशातना से ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है । और दर्शन-दर्शनी तथा दर्शन की सामग्री की आशातना से दर्शनावरणीय कर्म बांधता है ।

गुरु भत्ति - खंति - करुणा वय जोग कसाय विजय दाण जुओ ।
दढ धम्माइ-अज्जई सायमसायं विवज्जयओ ।।५५ ।।

गाथार्थ :- गुरु के उपर भक्ति, क्षमा, दया, व्रत, संयममार्ग, कषायो पर काबु, दान देने वाला तथ दृढधर्मी वगैरह शाता वेदनीय तथा इससे विपरीत आचरण वाला असाता वेदनीय कर्म बांधता है । शाता पाने के लिये शाता वेदनीय बाँधना आवश्यक है । शाता वेदनीय कर्म बँधाने वाले मुख्य शुभ आचार निम्नोक्त हैं -

१) गुरुजन भक्ति - माता, पिता, विद्यागुरु और धर्मगुरु वगैरह की मन-वचन-काया से भक्ति करना ।

२) क्षमा - जीवन में क्रोध का उदय हो ऐसे प्रसंगो में भी मन की शांति -समाधी टिकाकर क्षमा समता धारण करना ।

३) करुणा-दया - सर्व दुःखी जीवों पर दया-करुणा धारण करना ।

४) व्रत-पालन - साधु अथवा श्रावक जीवन के महाव्रतों अथवा अणुव्रतों का सुन्दर पालन करना ।

५) योग - आत्मा को मोक्ष के साथ, जीव को शिव के साथ जोडे वह योग । स्वाध्याय, भक्ति, विनय तप,जप सभी योग हैं । मन वचन काया के योग को अशुभ प्रवृत्ति में से दूर करके शुभ प्रवृति में जोडना भी योग है ।

६) कषाय विजय - क्रोध, मान, माया और लोभ ये कषाय हैं । जब जब इनके प्रसंग उपस्थित हों तब तब क्रोध को क्षमा से, मान को विनय से, माया को सरलता से ओर लोभ को संतोष से जीतना वह कषाय विजय है ।

७) दानरुचि - स्वयं के पास जो सामग्री हो उसे दूसरों के परोपकार के लिये देना - उसका त्याग करना वह दान हैं । उसमें रुचि वह दानरुचि ।

८) दृढधर्मी - धर्म आराधना करते विघ्न-अंतराय आये या विपत्तीयां आये, उसमें कहीं भी धीरज न खोये । धर्म आराधना छोडे नहीं, चाहे जैसी कसोटी में भी धर्म में स्थिर रहे व दृढधर्मी है ।

ऐसे तथा आदि याने दर्शन, पूजा, सेवा, पवित्रतादि अनेक गुणों द्वारा शाता वेदनीय कर्म बंधता है ।

इससे विपरीत कारणो से याने गुरुजनों का अपमान, क्रोधी, क्रुर, व्रतभ्रष्ट अशुभ योग का सेवन करने वाला, कषायी, कृपण, धर्म में अस्थिर आचरणवाला जीव अशातावेदनीय कर्म बांधता है ।

उम्मग्ग - देसणा-मग्ग-नासणा देव दव्व हरणे हिं ।
दंसण-मोहं जिण-मुणि-चेइअ-संघा-ऽऽइ पडिणीओ ।।५६।।

गाथार्थ :- उन्मार्ग का उपदेश, सन्मार्ग का नाश, देवद्रव्य का हरण वगैरह से जिनेश्वर प्रभु, मुनिराज, चैत्य और श्री संघ के प्रत्यनीक विरोधी दर्शन मोहनीय कर्म बांधते हैं ।

१) उन्मार्ग :- गलत पाप के मार्ग को दिखाना ।

२) मार्गनाश :- शुद्ध मोक्ष मार्ग का नाश करना अथवा लुप्त करना ।

३) देवद्रव्य हरण :- देवद्रव्य का हरण करना, भक्षण करना ।

४) प्रत्यनीक :- तीर्थंकर, साधु,चैत्य, प्रतिमा, चतुर्विध संघ के प्रति अनिष्ट आचरण इन सभी हेतुओं से जीव मुक्त बने, दूर रहे तो दर्शन मोहनीय न बांधे ।

दुविहंपि चरण मोहं कसाय-हासा ऽऽइ विसय - विवसमणो ।
बंधइ निरया ऽऽउ महा-रंभ - परिग्गह - रओ रुद्दो ।।५७।।

गाथार्थ :- कषाय और हास्यादि नौकषाय के विषयों में आसक्त मनवाला दोनों प्रकार के चारित्र मोहनीय कर्म बांधता है ।

महा आरंभ और महापरिग्रह में आसक्त और रौद्रध्यानी मनुष्य नरक का आयुष्य बांधता है ।

क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों में परवशता और आसक्ति **कषाय चारित्र मोहनीय कर्म** बंधवाता है ।

हास्यादि छह नोकषाय में परवशता और आसक्ति **नो कषाय चारित्र मोहनीय कर्म** बंध करवाते हैं ।

पाँच इंद्रियों के विषय में परवशता और आसक्ति **वेद-त्रिक चारित्र मोहनीय कर्म** बंधवाता है ।

आयुष्य कर्म बंध

१) नरक गति आयुष्य बंध - महा आरंभ - महा परिग्रह में तीव्र आसक्ति वाला जीव इनके कारण तीव्र कषायवंत बनता है । तीव्र कषाय अनंतानुंबधी बन कर जीव को रौद्रध्यानी बनाते हैं । क्रूर निर्दय बनाकर जीव घात करवाकर, दृष्ट परिणाम से नरकायु का बंध कराते हैं ।

तिरिआउ गूढ-हिअओ सडो स-सल्लो तहा मणुस्सा- ऽऽऊ ।
पयई इ तुण-कसाओ दाण-रुई मज्झिम- गुणो अ ।।५८।।

गाथार्थ - गूढ हृदयवाला, शठ एवं सशल्य जीव तिर्यंच गति आयुष्य का बंध करता है और स्वभाव से ही अल्प कषायवाला, दानप्रिय तथा मध्यम गुणों वाला मनुष्य आयुष्य का बंध करता है ।

२) तिर्यंच गति आयुष्य बंध -

● गुढ हृदय वाला यानि मायावी कपटी हो, हृदय में हलाहल जहर भरा हो और होंठ पर मीठी मधुर वाणी हो । जैसे - विनयस्त्न

● शठ याने - मुँह पर मीठा बोलने वाला, अध्यवसाय भयंकर हो, जैसे धवल शेठ

● शल्य तीन है - माया, मिथ्यात्व और निदान शल्य द्वारा दूसरों को ठगने की क्रिया । प्रायश्चित आदि करते समय शल्यसहित करे माया युक्त करे । जैसे - लक्ष्मणा साध्वी

ये तीन हेतु तिर्यंचायु का बंध कराने वाले है ।

३) मनुष्य गति आयुष्य बंध -

● अल्प कषायी, स्वभाव से ही जिसके क्रोध, मान, माया, लोभ,मंद हो गये हैं ।

● परोपकार - दूसरोंका हित करने की भावना से दानकी रुचिवाला हो ।

● ज्ञान,ध्यान, तप, जप, विनय, क्षमादि मध्यमगुण वाला हो ।

इन तीन हेतु से मनुष्य गति का बंध होता है ।

देवगति आयुष्य बंध

अविरयमाई सुरा- ऽऽऊं बाल तवो ऽ काम - निज्जरो जयइ ।
सरलो अ - गारविल्लो सुह नामं, अन्न-हा, अ-सुहं ।।५९।।

गाथार्थ :- अविरत सम्यगदृष्टि आदि, बाल तपस्वी, अकाम निर्जरा करने वाले देव का आयुष्य बाँधते हैं । सरल और गारव रहित शुभ नाम कर्म बाँधता है और उससे विरुद्ध हो तो अशुभ नाम कर्म बाँधता है ।

● अविरत सम्यगदृष्टि, देशविरती और सर्व विरती-सराग संयमी जीव देव-गुरु धर्म के प्रति राग के कारण देवायु बाँधते हैं ।

● बाल तपस्वी और अकाम निर्जरा करने वाले जीव लक्ष्यके बिना, ज्ञान - समझ के बिना तप करने से देवायु बाँधते हैं (प्रायः असुरायु बाँधते हं)

नाम कर्म बंध

नाम कर्म विशाल है । १०३ प्रकृतियाँ हैं । उनका संक्षिप्त विभाजन दो भाग मे किया गया है ।

१) शुभ नाम कर्म २) अशुभ नाम कर्म

● माया कपट रहित सरल स्वभावी हो

● त्रिद्धी गारव,रस गारव, शाता गारवसे रहित हो ।

ऐसे जीव शुभ नामकर्म बाँधते हैं ।

इससे विपरीत याने मायावी और गारववाला जीव अशुभ नाम कर्म बाँधता है ।

गोत्र कर्म बंध

गुणपेही मयरहिओ, अज्झयण - ज्झावणारुई निच्चं ।
पकुणइ जिणाइभत्तो, उच्चं नीअं इयर हा उ ।।६०।।

गाथार्थ :- हमेशा गुणग्राही, निरहंकारी, पढने -पढाने की रुचि वाला और जिनेश्वर प्रभु वगैरह का भक्त उच्च गोत्र और उससे विरुद्ध हो तो नीच गोत्र बाँधता है ।

उच्च गोत्र के कर्म बंध हेतु -

गुणग्राही (गुणानुरागी) जहाँ भी नजर पडे वहाँ से गुणों को ही ग्रहण करे । स्वाभाविक दृष्टि ही ऐसी हो कि दोष दिखाई ही न दें । छोटे पर दूसरों के गुण को बडा करके प्रशंसा कर स्वीकारे ।

● निरहंकारी - अहंकार रहित हो, नम्रता-विनय गुणवाला होता है ।

● सतत कुछ नया सीखने और सिखाने अर्थात पढने और पढाने की रुचि वाला हो ।

● जिनेश्वर परमात्मा का भक्त, अरिहंतादि पंच परमेष्ठि का भक्त हो । उनकी पूजा,अर्चा, भक्ति और सेवा वैयावच्च करने वाला हो ।

ऐसा जीव उच्च गोत्र कर्म बाँधता है । उससे विपरीत याने परनिंदा अहंकार, प्रमादि, पंच-परमेष्टि की आशातना अवज्ञा करने वाला जीव नीच गोत्र कर्म बांधता है ।

अन्तराय कर्म बंध हेतु और उपसंहार

जिणपूआ - विग्घकरो, हिंसाइपरायणो जयइ विग्घं ।
इअ कम्म विवागो ऽयं, लिहिओ देविंद-सूरीहिं ।।६१।।

गाथार्थ :- जिनेश्वर परमात्मा की पूजा में अन्तराय / विघ्न करने वाला, हिसा आदि कार्यों में परायण / रत जीव अन्तराय कर्म का बंध करता है । इस प्रकार कर्म विपाक नामक प्रथम कर्म ग्रंथ श्री देवेन्द्रसूरिजी म.सा. द्वारा लिखा गया है ।

कुदेशना द्वारा अनंत उपकारी ऐसे जिनेश्वर परमात्मा की पूजा भक्ति में अंतराय करने से तथा हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रहादि में आसक्त जीव अंतरायकर्म उपार्जन करता है ।

'कर्म - विपाक' नाम का यह प्रथम कर्म ग्रंथ श्रीमद् देवेंद्रसूरीश्वरजी म.सा. ने लिखा है ।

सरल सहज भाषा में लिखते कहीं जिनाज्ञा विरुद्ध लिख गया हो तो त्रिवेधे-त्रिवेधे मिच्छामि दुक्कडम् ।

विरति वाटिका

अतिथि संविभागव्रत

अतिथि..... न तिथि.....

जिसकी आने जाने की कोई तिथि निश्चित नहीं, यहां इस शब्द का प्रयोग खासकर के साधु के लिये करने में आया है ।

अचानक अपने यहां साधु का आगमन हो तब हम कुछ उलझन में न पड जाये.... मोह में या माया में फंस जाये तो हम कुछ भूल कर बैठे ऐसी सारी संभावनाये होती है । हम साधु को शुद्ध दान देकर सच्चा लाभ कमाये, इसके लिये इस व्रत की सच्ची समझ आवश्यक है ।

साधु का जीवन शुद्ध बने इसके लिये आहार शुद्धि तो जरुरी है ही पर साथ-साथ में आहार बोहराने में भी शुद्धि सम्हालना एवं भाव विशुद्ध रखना अत्यन्त अनिवार्य है ।

इस व्रत के लिये श्रावक को चौविहारे उपवास सहित दिवस-रात्रि का आठ प्रहर का पौषध करने का होता है, तथा दूसरे दिन एकासणा (पारणा) करने का होता है । साधु-साध्वीजी भगवंत का योग हो तो उन्हें आहार के लिये विनंति -प्रार्थना करने की होती है, लाभ मिले तो पुण्य साधु-साध्वीजी भगवंत जितनी वस्तु वहोरे इतने ही द्रव्य से एकासणा करने का होता है, यदि साधु-साध्वीजी भगवंत का योग न हो तो व्रतधारी श्रावक को खाना खिलाकर एकासणा करने का होता है ।

आओ ! हम इस व्रत को इसके अतिचारो को जानने, समझने आचरण में लाने का प्रयत्न करे ।

बारहवाँ अतिथि संविभाग नाम का व्रत है जो लौकिक व्यवहार के पर्व, उत्सव, त्यौहार के निमित्त बिना, प्रयोजन बिना महापुरुष, साधु मुनिराज श्रावक के घर भोजन के समय पर ही बिना बताये आये उसे अतिथि कहा जाता है एवं जो तिथि-पर्व आदि देखकर भोजन के लिये आये उसे अभ्यागत कहा जाता है । अब श्रावक को भी अपने घर अतिथि आया देख कर रोमांचपूर्वक, अपूर्व आनंद सहित, स्वयं को बडा भाग्यशाली समझकर उस अतिथि को न्यायोपार्जित द्रव्य से लायाहुआ और प्रसंग आदि दोष से रहित साधु के लिये नहीं पर स्वयं के लिये बनाया हुआ ऐसा निर्दोष अन्न पानी रुप द्रव्य, उसका देशकाल के अनुमान से, श्रद्धासत्कार आदि क्रमयुक्त, पश्चातकर्मादि दोष रहित बडी भक्तिपूर्वक अपनी आत्मा की अनुग्रह बुद्धि से ''संजयाणंदाणं'' यानि संयति के लिये अन्न-पानी रुप द्रव्य का विभाग करना यानि उस संविभागित अन्न का यति को दान देना उसे अतिथि संविभाग कहा जाता है ।

जो पाक्षिक आदि पर्वो के दिन उपवास सहित पौषध वगैरह करके उसके पारणे के दिन पूर्वोक्त न्यायोपार्जित द्रव्य से बनाया हुआ शुद्धमान अन्नपान आदि उसमें से विशेष भाग का दान प्रथम साधुमुनिराज को देकर फिर बचे हुए आहार से खुद एकासणा करे ऐसा पौषध आदि पर्व के पारणे के दिन अवश्य करने का नियम करना उसे अतिथिसंविभागव्रत कहा जाता है । इस व्रत में अनाभोग आदि से लगे ऐसे पांच अतिचार शुद्ध

करना...

प्रथम सचित्त निक्षेपण, दूसरा सचित्तपीहण, तीसरा कालातिनक्रमदान, चौथा परव्यपदेश अतिचार एवं पांचवां मत्सरदान अतिचार ।

प्रथम साधु को देने योग्य जो प्राशुक अन्नपानी आदि हो उन्हैं नहीं देने की बुद्धि से सचित्त पृथ्वी माटी, पानी का घडा, जलता हुआ चूल्हा, अनाज का ढेर, पान, फल, फूल के उपर निक्षेप किया हो यानि रखा हो इससे सचित्तनिक्षेपण नाम का अतिचार तथा पूर्वोक्त साधु को देने योग्य सुझता (साधु को चले ऐसा) अन्नपान आदि हो उसे न देने की बुद्धि से सचित्त पान फूल आदि से ढंका हो, पिधानं यानि ढंकना वो दूसरा सचित्त पान फूल आदि से ढंका हो वो दूसरा सचित्त पिधान अतिचार जानना ।

तीसरा न देने की बुद्धि से साधु को गोचरी करने के समय का अतिक्रमण कर यानि साधु को वोहराने का समय टालकर बाद में अन्न-पानी का निमंत्रण देने जाय और कहे कि महाराज मेरे उपर कृपा करके वोहरने हेतु पधारो नहीं तो मैं भूखा रहुंगा तब खप नहीं होने के बावजूद श्रावक भूखा रहेगा ऐसे भय से कुछ वोहरा कर चले जाय तो वो तीसरा कालातिक्रम अतिचार जानना ।

चौथा जब स्वयं को खपे ऐसी कोई चीज साधु मांगे और पूछे की यह चीज किसकी है ? तब नहीं देने की बुद्धि से अहोभाव दिखाते हुए अपनी चीज होने पर भी दूसरो का नाम लेकर कहे की यह चीज हमारी तो नहीं है, पर हमारे भाई की है, इसलीये हमारी ही है और हमारा भाई भी अच्छा दानदाता है, इसलीये आप आराम से ले लो पर वो परायी चीज जानकर साधु ले नहीं वो चौथा परव्यपदेश नामका अतिचार जानना ।

पाँचवां अपने से कोई गरीब हो, वो अच्छी तरह से दान देता हो, उसका दान देखकर उसकी तारीफ सुनकर सोचे, यह मेरे से गरीब होने पर भी क्या मेरे से बडा बनने की चाहत रखता है, ऐसे मत्सर से उसकी स्पर्धा में यानि ईर्ष्या करके साधु को दान दिया हो अथवा दान के समय साधु ने कोई चीज मांगी तो उनके उपर रोष करके कहे की आपको हमारा घर ही मिलता है, दूसरे कोई गांव में नहीं है क्या ? ऐसा कहकर क्लेष का उद्भव करे अथवा साधु की मांगी हुई चीज घर में होते हुए भी दी नहीं हो, कोप से दान दिया हो तथा रोग आदि के कारण से कदाचित साधु को असुझतां अन्नपानी आदि दिया हो और कंजुसपने से साधु को सुझतां वोहरने योग्य कल्पे ऐसा अन्नपान आदि दिया न हो तो वो पांचवां मत्सर नामक अतिचार जानना । ये पांच अतिचार श्रावक को जानना चाहिये पर आचरण में नहीं लाना चाहिये ।

बारह महिने में कम से कम एक बार अतिथिसंविभागव्रत करने का नियम व्रतधारी श्रावक को करना चाहिये, ज्यादा बार कर सके इसका लक्ष्य रखना चाहिये । अतिचार न लगे एवं व्रत शुद्ध बने यह आत्म निर्मलता का सूचक है, ऐसे व्रत आराधक बनने का पुरुषार्थ करे ।

संलेषणा

जिन शासन.....

श्रावक जीवन.....

व्रत नियम के बिना नहीं शोभित होता..... नहीं फलित होता.....

प्रभुजी ने श्रावक जीवन की सफलता के लिये श्रावक के (२१) इक्कीस गुण एवं बारह व्रत बताये है, हमने सम्यग् दर्शन सहित श्रावक के बारह व्रतो को कुछ समझने, जानने एवं जीवन में उतारने का प्रयत्न किया है।

अब हमें संलेषणा के अतिचारो को जानने एवं समझने का प्रयत्न करने का है।

जीवन में व्रतो का पालन जीवन को सुंदर बनाता है, जो अंत में जीव को समाधि मरण की ओर ले जाता है, कारण की साधु या श्रावक जीवन की सफलता समाधि मरण में रही हुई है इसीलये तो प्रार्थनासूत्र में उसी तरह नामस्तव में प्रभु के पास इसकी याचना करते रहते है।

समाधि मरण के लिये अंत में सारे संसार के पदार्थ भोग, स्नेही, स्वजन और शरीर पर से भी आसक्ति एवं ममत्व भाव दूर कर संलेखना करने जीव तैयार होता है, ऐसे जीव को भी कैसे -कैसे अतिचार लगने की संभावना होती है, इसकी सुंदर बात शास्त्रकार महर्षियो ने हमें बतायी है, हमें सावधान किया है और हमें इस अमूल्य घडी को साध लेने की सच्ची सलाह दी है।

सद्गति की परम्परा चाहिये ?

तो समाधि मरण प्राप्त करना पडेगा....

समाधि मरण प्राप्त करना है ?

तो अनासक्त बनना पडेगा....

अंतिम क्षण को साधना पडेगा.....

सागारी अनशन को भी अंत में स्वीकार करना पडेगा....

इसके लिये संलेषणाव्रत को जानना पडेगा....

वैसे तो संलेषणा के अतिचार हम रोज राई-देवसि प्रतिक्रमण में बोलते है, विशेषता से पक्खी, चोमासी, संवत्सरी प्रतिक्रमण में बोलते है। परंतु केवल बोल जाने से इसके अर्थ को हम पा नहीं सकते। आओ यहां हमें संलेषणा के अतिचारो को जानकर के इसमें से स्वयं को मुक्त बनाने का प्रयत्न करना है, उसी तरह हमारे प्रतिक्रमण को ज्यादा से ज्यादा शुद्ध बनाने जागृत बनने का है, इसके लिये सहायक कितनी ही बातों को समझने का प्रयत्न करने का है।

अपश्चिम मरणांतिक जो अनशन संलेषणा करनी उसके पांच अतिचार शुद्ध करना चाहिये, वो अतिचार इस अनुसार है -

१) इस धर्म के प्रभाव से मैं इहलोक यानि यही मनुष्य भव पाकर के सेठ, सेनपाति, राजा, मंत्री वगैरह की ऋद्धि को पांऊ, ऐसी अभिलाषा, इच्छा उसका प्रयोग यानि मन का व्यापार करे वो प्रथम ईहलोकाशंसा प्रयोग नामक अतिचार है ।

२) इस धर्म के प्रभाव से परलोक की बाबत में मैं परभव में इन्द्र बनूं अथवा चक्रवर्ती की पदवी पाऊं ऐसी अभिलाषा का मन का व्यापार करना, वो दूसरा परलोकाशंसा प्रयोग नाम का अतिचार है ।

३) अनशन लेने से होने वाले सन्मान - सत्कार देखकर बहुत काल तक जीने की अभिलाषा-इच्छा करना वो तीसरा जीवीताशंसा प्रयोग अतिचार है ।

४) चौथा कोई कर्कश क्षेत्र की वजह से अनशन लेकर कोई पूजा,अर्चना न करता हो इसलीये या क्षुधा की पीडा से शीघ्र मरण हो तो अच्छा ऐसी जो अभिलाषा, इच्छा करना वो चौथा मरणाशंसा प्रयोग नाम का अतिचार है ।

५) पांचवां इस धर्म के प्रभाव से मैं अगले भव में बढिया शब्द रुप रस आदि जो कामभोग है, वो पाऊं, ऐसी अभिलाषा, इच्छा रुप मन का व्यापार वो पांचवां कामभोगाशंसा प्रयोग अतिचार ।

ये पांच अतिचार जानना पर आचरण में नहीं लाना, अंतिम समय में सारी आसक्तियों से रहित बन सम्पूर्ण सामधि बनाये रखना ।

जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छामि दुक्कडं